जनसत्ता

आतंक पर नकेल

जम्मू-कश्मीर के बारामूला और शोपियां जिले में अलग-अलग तलाशी अभियान के दौरान छह आतंकवादियों को मार गिराना भारतीय सेना की एक और बड़ी कामयाबी कही जा सकती है। बारामूला जिले में मारे गए तीन आतंकियों में एक लश्करे-तैयबा का कमांडर था और दो पाकिस्तानी नागरिक बताए जा रहे हैं। इस मुठभेड़ के बाद जम्मू-कश्मीर पुलिस ने दावा किया है कि बारामूला में आतंकवादियों को नेस्तनाबूद कर दिया गया है। अगर ऐसा है, तो निस्संदेह यह भारतीय सुरक्षा बलों की बड़ी कामयाबी है। पिछले करीब तीन सालों में सुरक्षा बलों के सघन तलाशी अभियान और आतंकवादी ठिकानों पर कड़ी निगरानी की वजह से वहां स्थानीय दहशतगर्दी पर काफी हद तक अंकुश लगाया जा चुका है। आतंकवादी हमलों में निरंतर कमी आई है। पाकिस्तान की तरफ से होने वाली घुसपैठ में भी कमी आई है। इस तरह वहां आतंकवादियों में घबराहट और बौखलाहट के संकेत बहुत पहले मिलने लगे थे, जब उन्होंने सुरक्षा बलों को बंधक बनाना शुरू कर दिया और कश्मीरी युवकों से जम्मू-कश्मीर पुलिस में भर्ती न होने के फरमान निकालने शुरू कर दिए। अगर बारामूला से आतंकवादियों को पूरी तरह खत्म कर दिया गया है, तो यह दहशतगर्दों की कमर टूटने का ही संकेत है।

जम्मू-कश्मीर में आतंकवाद के जड़ें जमाने का बड़ा कारण स्थानीय लोगों से उसे मिलने वाला समर्थन रहा है। आतंकवादी और अलगाववादी संगठन तथा कुछ धार्मिक कट्टरपंथी युवाओं को गुमराह करने में कामयाब होते रहे हैं। उनके परिवारों को आतंकवाद से मिले जख्मों को कुरेद कर या फिर उन्हें धार्मिक और स्थानीय मुद्दों के जरिए भावनात्मक रूप से उकसा कर कभी उन्हें हाथ में पत्थर तो कभी बंदूक उठाने को प्रोत्साहित करते रहे हैं। इसके लिए पाकिस्तान से उन्हें मदद भी मिलती रही है। मगर जब से अलगाववादी संगठनों के बैंक खातों पर कड़ी नजर रखी जाने लगी और सीमा पार से आने वाले पैसे पर रोक लगाने में कामयाबी मिली है, तब से आतंकवादी संगठनों के सामने मुश्किलें खड़ी हो गई हैं। फिर मुठभेड़ में मारे जाने वाले नौजवानों के जनाजे की नमाज में तकरीर पर रोक और सोशल मीडिया पर ऐसी तकरीरें प्रसारित करने पर अंकुश लगने से भी युवाओं को गुमराह करने का उनका सिलसिला काफी कमजोर हो गया है। स्थानीय लोगों को अपने रोजी-रोजगार से मतलब होता है, वे दहशतगर्दों और अलगाववादियों के हथकंडों को समझते हैं, इसलिए जब उन्होंने देखा कि दहशतगर्द अब उनके ही बच्चों को निशाना बनाने लगे हैं, तो उन्होंने उन्हें पनाह देनी बंद कर दी है। यह भी एक तरह से सुरक्षा बलों की कामयाबी है।

अब तक के अनुभवों से जाहिर है कि जब तक स्थानीय लोग दहशतगर्दी को समर्थन देना बंद नहीं करते, इस पर पूरी तरह काबू पाना मुश्किल बना रहता है। अगर अब वहां सड़कों पर पत्थर लेकर उतरने वाली भीड़ नहीं दिखाई देती, अलगाववाद के नारे नहीं लगते, युवाओं के दहशतगर्दों में शामिल होने की दर बढ़ी और तमाम धमकियों और अपीलों के बावजूद वे सेना और पुलिस में भर्ती हो रहे हैं, तो यह इसी बात का संकेत है कि स्थानीय लोगों का मन बदल रहा है। आतंकवाद पर नकेल कसने का सुरक्षा बलों का यह प्रयास चलता रहा, तो निस्संदेह इस समस्या से निपटने की उम्मीद बनती है। हालांकि तकाजा यह भी है कि केवल बंदूक पर भरोसा न करके स्थानीय लोगों की अपेक्षाओं और बुनियादी जरूरतों का भी ध्यान रखना चाहिए।

हादसों की सड़क

दिल्ली के आनंद विहार इलाके में दो कारों के बीच टक्कर और उसमें तीन लोगों की मौत की घटना लगातार सड़क हादसों की एक और कड़ी है। इस तरह की दुर्घटनाएं एक बड़ी समस्या बन चुकी हैं और रोजाना इनमें अनेक लोगों की जान जा रही है। बुधवार को आनंद विहार में एक फ्लाइओवर पर विपरीत दिशा से आ रही दो कारों की सीधी टक्कर सिर्फ इसलिए हो गई कि एक कार चालक ने सुरक्षित तरीके से गाड़ी चलाने के बजाय रफ्तार तेज रखी और संतुलन बिगड़ने के बाद बेलगाम होकर पहले डिवाइडर को तोड़ा, फिर सामने से आ रही एक कार से टकरा गया। टक्कर इतनी तेज थी कि दोनों कारों में तुरंत आग लग गई और उसमें तीन लोग जिंदा जल गए। उन कारों में मौजूद दो लोग झुलसी हालत में किसी तरह बाहर निकल सके। यह हादसा एक और उदाहरण है कि सड़क पर वाहन चलाने वाले किसी एक व्यक्ति की लापरवाही कैसे कई लोगों की जान ले लेती है और कई परिवारों को लाचार बना जाती है।

यह समझना मुश्किल है कि वाहन चलाते हुए लोगों को यह ध्यान रखना जरूरी क्यों नहीं लगता कि बेहद मामूली लापरवाही की वजह से अगर गाड़ी का संतुलन बिगड़ा तो न केवल दूसरों की, बल्कि खुद उनकी जान भी जा सकती है। लगता है, हमारे यहां ज्यादातर लोग सड़कों पर सिर्फ वाहन चलाना जानते हैं, सड़क-सुरक्षा से जुड़े नियम-कायदों का पालन करना उन्हें जरूरी नहीं लगता। जबकि ऐसी दुर्घटनाओं में से लगभग सभी में यही बात सामने आती है कि किसी खास वाहन के चालक ने नियमों को धता बता दिया था। यह बेवजह नहीं है कि देश भर में होने वाले सड़क हादसों में रोजाना सैकड़ों लोग मारे जाते हैं। एक अध्ययन के मुताबिक दुनिया भर में हर साल सड़क हादसों में होने वाली मौतों का दसवां हिस्सा अकेले भारत का होता है। खुद भारत सरकार की एक रिपोर्ट बताती है कि 2015 में देश भर में पांच लाख से ज्यादा सड़क दुर्घटनाएं हुईं, जिसमें करीब डेढ़ लाख लोगों की जान चली गई।

यह आंकड़ा इसलिए चिंताजनक है कि इतने लोग आपदाओं, आतंकवादी हमलों या फिर अन्य संघर्षों में भी नहीं मारे जाते। फर्क यह है कि आतंकी हमलों जैसी घटनाओं में मारे गए लोगों की गिनती होती है, लेकिन हादसों में जान गंवाने वालों के आंकड़े हमें परेशान नहीं करते। जबकि सड़क हादसों में मारे जाने वालों में ज्यादातर लोग कामकाजी होते हैं और उनमें ज्यादा संख्या युवाओं की होती है। यानी ये हादसे न केवल बड़ी तादाद में जनक्षति की वजह बनते हैं, बल्कि इनसे देश की अर्थव्यवस्था को भी भारी नुकसान होता है। विधि आयोग की एक रिपोर्ट के मुताबिक अगर सड़क दुर्घटना के एक घंटे के भीतर घायलों को अस्पताल पहुंचा दिया जाए या उन्हें आपात चिकित्सा मिल जाए तो करीब पचास फीसद की जान बचाई जा सकती है। लेकिन एक बड़ी समस्या यह भी है कि बहुत सारे लोगों की जान इसलिए भी चली जाती है कि हादसे के बाद अगर कोई व्यक्ति बुरी तरह घायल अवस्था में होता है तो उसे समय रहते आपात चिकित्सा की सुविधा नहीं मिल पाती। सड़क सुरक्षा को सुनिश्चित करने वाले तंत्र से लेकर लोगों की अपने स्तर पर सुरक्षित वाहन चलाने को लेकर जागरूकता की भूमिका जब तक सक्रिय नहीं होगी, तब तक ऐसी घटनाएं देश के लिए बड़े नुकसान की वजह बनती रहेंगी।

कल्पमेधा

जिसे आप नहीं समझते, यदि उसकी प्रशंसा करते हैं तो बुरा करते हैं। लेकिन अगर निंदा करते हैं तो और भी बुरा करते हैं।
-लियोनार्डो द विंची

प्राथमिक शिक्षा और सवाल

अरविंद कुमार सिंह

आज प्राथमिक विद्यालय अव्यवस्था के शिकार हैं। शिक्षा का अधिकार कानून लागू होने के आठ साल बाद भी सरकारी स्कूलों में पेशेवर शिक्षकों की भारी कमी है। शिक्षा का अधिकार कानून के तहत राज्यों को स्कूलों में दक्ष एवं पेशेवर शिक्षकों को नियुक्त करने के एक महत्त्वपूर्ण मानदंड को पूरा करने के लिए पहले तीन वर्ष का समय दिया गया और अब इसे दो वर्ष और बढ़ा दिया गया। लेकिन अपेक्षित परिणाम हासिल नहीं हुए।

देश में शिक्षा का अधिकार कानून और सर्वशिक्षा अभियान जैसी योजनाएं लागू होने के बाद भी प्राथमिक शिक्षा की सेहत सुधर नहीं रही है। हाल में जारी एक रिपोर्ट में इस बात का खुलासा हुआ है कि देश भर में आठवीं कक्षा के अट्ठाईस फीसद छात्र ऐसे हैं जो कक्षा दो का पाठ तक नहीं पढ़ पाते हैं। इस मामले में जम्मू-कश्मीर की हालत सबसे खराब है, जबकि उत्तर प्रदेश दूसरे और हरियाणा तीसरे स्थान पर है। रिपोर्ट के मुताबिक हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड और पंजाब के स्कूलों में स्थिति अन्य राज्यों के मुकाबले बेहतर है। अच्छी बात यह है कि देश में बेटियों की पढ़ाई को लेकर जागरूकता बढ़ी है। पिछले साल किए गए व्यापक सर्वे के आधार पर बनाई गई यह रिपोर्ट बताती है कि बेटियों के स्कूल न जाने की तादाद में भारी कमी आई है। आंकड़ों पर गौर करें तो वर्ष 2006 में स्कूल न जाने वाली लड़कियों (11 से 14 साल) की संख्या दस फीसद से ज्यादा थी जो घट कर 2018 में सिर्फ चार फीसद रह गई है। लेकिन मध्यप्रदेश में स्कूल न जाने वाली लड़कियों की तादाद पहले से अधिक हुई है। गौर करें तो आज भी लाखों बच्चे स्कूली शिक्षा की परिधि से बाहर हैं। उचित होगा कि इस तथ्य की पड़ताल हो कि आखिर बच्चे स्कूल क्यों नहीं जा रहे हैं।

एक अप्रैल 2010 से लागू छह से चौदह वर्ष के बच्चों के लिए निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार कानून में बच्चों को अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का प्रावधान किया गया है। बच्चे स्कूल जाएं, इसके लिए बाल श्रम रोकथाम एवं नियमन कानून 1986 में चौदह वर्ष से कम उम्र के बच्चों की मजदूरी को निषिद्ध बनाया गया है। इसके अलावा बच्चे अधिक से अधिक शिक्षित हों, इसके लिए सर्वशिक्षा अभियान चलाया जा रहा है। इसके लागू होने के बाद से तकरीबन तेरह लाख बच्चों को शिक्षा की मुख्यधारा से जोड़ा गया है। लेकिन अभी भी पचास लाख से अधिक बच्चे प्राथमिक शिक्षा की परिधि से बाहर हैं जो प्राथमिक शिक्षा की बदहाली को रेखांकित करता है। भारत में प्राथमिक शिक्षा किस कदर बदहाल है, इसका खुलासा संयुक्त राष्ट्र की 'एजुकेशनल फॉर ऑल ग्लोबल मॉनिटरिंग 2013-14' की एक रिपार्ट से भी हुआ था, जिसमें कहा गया था कि भारत में निरक्षर युवाओं की तादाद अट्ठाईस करोड़ से ज्यादा है। यह आंकड़ा दुनिया के निरक्षर युवाओं की कुल तादाद का तकरीबन सैंतीस फीसद है। रिपोर्ट में प्राथमिक शिक्षा की बदहाली के अनेक कारण गिनाए गए थे, लेकिन शिक्षा पर होने वाले खर्च में भारी असमानता को भी इसके लिए जिम्मेदार माना गया था। कुछ साल पहले एक रिपोर्ट में सामने आया था कि केरल में प्रति व्यक्ति शिक्षा पर खर्च लगभग बयालीस हजार रुपए है, वहीं बिहार सहित देश के अन्य राज्यों में छह हजार या इससे भी कम है।

स्कूली शिक्षा को लेकर पिछले साल हुए सर्वे में पता चला कि देश के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश में गरीबी के कारण सत्तर फीसद और मध्यप्रदेश में पिच्यासी फीसद गरीब बच्चे पांचवीं तक ही शिक्षा ग्रहण कर पाते हैं। प्राथमिक शिक्षा की खराब गुणवत्ता का जिक्र करते हुए रिपोर्ट में यह भी कहा गया कि महाराष्ट्र के महज चवालीस फीसद और तमिलनाडु के सिर्फ तिरपन फीसद बच्चे ही दो अंकों वाले घटाने के सवाल हल करने में सक्षम हैं। यानी आधे से अधिक बच्चे गणित विषय में बेहद कमजोर हैं। भाषा पर भी इनकी पकड़ कमजोर मिली। चार में से एक बच्चा एक वाक्य तक नहीं पढ़ सकता। कुछ राज्यों में लड़कियों का स्तर लड़कों से बेहतर जरूर पाया गया, लेकिन यह संतोषजनक नहीं है। इसलिए कि विद्यालयों में लड़कियों के नामांकन की दर अपेक्षा के अनुरूप नहीं है। रिपोर्ट में सबसे चौंकाने वाली यह बात सामने आई कि देश में शिक्षा के प्रचार-प्रसार के तमाम प्रयासों व दावों के बाद भी कोई उल्लेखनीय सफलता हाथ नहीं लगी। वह भी तब जब संविधान में बच्चों को अनिवार्य एवं निशुल्क शिक्षा का अधिकार हासिल है और पिछले कुछ सालों में इस पर तकरीबन डेढ़ लाख करोड़ रुपए खर्च किए जा चुके हैं।

हालांकि मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा 'शिक्षा का अधिकार' की तीसरी रिपोर्ट में दावा किया गया था कि स्कूलों की संख्या और स्कूल जाने वाले विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि हुई है। लेकिन ये

आंकड़े तब तक नाकाफी हैं, जब तक कि शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार नहीं होता है। आज प्राथमिक शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन की जरूरत है। किंतु यह तभी संभव होगा जब विद्यालयों को समुचित संसाधन उपलब्ध कराए जाएं और साथ ही प्रशिक्षित शिक्षकों की भर्ती की जाए, ताकि बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा दी जा सके।

आज प्राथमिक विद्यालय अव्यवस्था के शिकार हैं। शिक्षा का अधिकार कानून लागू होने के आठ साल बाद भी सरकारी स्कूलों में पेशेवर शिक्षकों की भारी कमी है। शिक्षा का अधिकार कानून के तहत राज्यों को स्कूलों में दक्ष एवं पेशेवर शिक्षकों को नियुक्त करने के एक महत्त्वपूर्ण मानदंड को पूरा करने के लिए पहले तीन वर्ष का समय दिया गया और अब इसे दो वर्ष और बढ़ा दिया गया। लेकिन अपेक्षित परिणाम हासिल नहीं हुए। देश में सरकारी, स्थानीय निकाय और सहायता प्राप्त स्कूलों में शिक्षकों के पैंतालीस लाख पद हैं। लेकिन स्थिति यह है कि उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिम बंगाल सहित आठ राज्यों में ही शिक्षकों के पांच लाख से अधिक पद रिक्त हैं। अकेले उत्तर प्रदेश में डेढ़ लाख से अधिक शिक्षकों की कमी है। विडंबना तो यह कि सर्वशिक्षा अभियान के तहत नियुक्त शिक्षकों में लाखों अप्रशिक्षित शिक्षक हैं और न्यूनतम योग्यता नहीं रखते। लेकिन किसी तरह उनसे काम चलाया जा रहा है। जबकि शिक्षा अधिकार कानून में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और हर स्कूली छात्र को प्रशिक्षित शिक्षकों से पढ़ाने का प्रावधान है। मालूम हो कि एक मामले में देश की शीर्ष अदालत भी छात्रों को प्रशिक्षित शिक्षकों से ही पढ़ाने का निर्देश दे चुकी है।

यहां ध्यान देना होगा कि प्राथमिक शिक्षा की बदहाली के लिए कोई एक कारण जिम्मेदार नहीं है। कई कारण हैं जिनमें से एक शिक्षकों का स्कूलों से गायब होना भी है। उचित होगा कि केंद्र व राज्य सरकारें शिक्षा की बदहाली के लिए जिम्मेदार कारणों की ईमानदारी से पड़ताल कर उसे दूर करें। शिक्षा पर खर्च बढ़ाने की भी जरूरत है। यूनेस्को की रिपोर्ट में सुझाया गया था कि 2015 और इसके बाद की योजनाओं में कुल सरकारी खर्च का बीस फीसद हिस्सा शिक्षा पर खर्च होना चाहिए। लेकिन हकीकत है कि आज इस मद में चार फीसद से अधिक खर्च नहीं हो पा रहा है। प्राथमिक शिक्षा को सुधारने के लिए शिक्षक-छात्र अनुपात को भी कम करना होगा। कई स्कूलों में पचास से साठ छात्रों पर एक शिक्षक है। ग्रामीण इलाकों में तो हालात और बदतर हैं। ज्यादातर स्कूलों की इमारतें बेहद जर्जर हैं और उन्हीं में छात्रों को बिठाया जाता है। उनकी जान जोखिम में होती है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने मंत्री, सरकारी अफसर और सरकारी खजाने से तनख्वाह पाने वाले हर व्यक्ति के बच्चों को सरकारी स्कूल में पढ़ाना अनिवार्य किया था। उम्मीद की गई थी कि सरकार इसे लागू किया जाएगा। लेकिन ऐसा नहीं हुआ, बल्कि इस फैसले को सर्वोच्च अदालत में चुनौती दे दी गई। अगर आदेश का पालन हुआ होता तो निस्संदेह सरकारी प्राथमिक विद्यालयों की तस्वीर बदलती। ऐसे में यह सवाल लाजिमी है कि प्राथमिक शिक्षा की सेहत कैसे सुधरेगी।

तकनीक का जाल

संतोष उत्सुक

दुनिया मेरे आगे

कुछ दिन पहले एक संबंधी का जिस वक्त फोन आया, उस वक्त मैं कार चला रहा था। इसलिए फोन नहीं सुन सका। रात का समय था, सोचा कल सुबह फोन कर लूंगा। अगले दिन उन्हें दो-तीन बार फोन किया तो उनका मोबाइल बंद या पहुंच के बाहर बताता रहा। शाम को फिर किया तो उनसे बात हुई। वे बोले, घर में छोटे बच्चे आए हुए हैं। फोन उनके पास था, इसलिए मैं बाद में देख सका कि आपका फोन आया था। मैंने पूछा कि आप अपना फोन अपने पास क्यों नहीं रखते, कोई जरूरी संदेश आए तो! उन्होंने हंसते हुए कहा कि 'क्या करें... बच्चे नहीं छोड़ते।'

काफी समय पहले अभिभावक छोटे बच्चों का ध्यान बंटाने के लिए टीवी चला देते थे और माताएं घर का काम करती रहती थीं। लेकिन पिछले कुछ सालों से मोबाइल हमारे जीवन का खतरनाक तरीके से हिस्सा बन चुका है। इसे बच्चों के हाथों में दे दिया गया है। दरअसल, टीवी और खेल उपकरणों की जगह मोबाइल ने ले ली है। आमतौर पर बच्चे अब शारीरिक विकास से जुड़े खेल नहीं खेलते। उनका संसार मोबाइल हो चुका है। हम सबने मिल कर पढ़ाई, नौकरी जैसी व्यस्तताओं के कारण बचपन के आंगन से बचपन को भगा दिया है। ज्यादा सुविधाएं कमाने के चक्कर में बच्चों का स्वास्थ्य, नुकसान पहुंचाने वाले डिब्बाबंद जंक फूड के हवाले कर दिया है। यों बच्चों को पढ़ाई और दूसरी गतिविधियों से ही फुर्सत नहीं, लेकिन समय मिलते ही मोबाइल उन्हें जकड़ लेता है। अभिभावक फेसबुक पढ़ते रहते हैं और बच्चों के प्रश्नों से बचने के लिए उनके हाथ में मोबाइल थमा देते हैं। बाकी काम बच्चे खुद कर लेते हैं। चिप्स चबाते हुए धीरे-धीरे इसकी लत बच्चे को लग जाती है।

उधर व्यस्त माता-पिता को पता नहीं चलता कि उनके घर का बिगड़ता बचपन कितने सवाल खड़े कर रहा है, उनके लिए और खुद के लिए भी। वे इस बात पर गर्व महसूस करने लगते हैं कि हमारा बच्चा बहुत तेज है। अभी से मोबाइल बहुत अच्छे से चलाने लगा है। कुछ कहते हैं कि हमसे ज्यादा तो हमारे बच्चे को आता है। वह तो हमें भी सिखा देता है। ऐसा लगने लगा है कि आजकल बचपन में बुद्धिमान होने का सबसे शानदार प्रमाण मोबाइल चलाना ही रह गया है। धीरे नहीं, बहुत तेजी से बच्चे अच्छे से पढ़ने के बहाने, इंटरनेट का पैक हथिया लेते हैं और यूट्यूब जैसी सुविधाओं के सहारे बचपन में ही युवा होने लगते हैं। बचपन को बचपन न रहने देने के लिए अभिभावक सीधे जिम्मेदार हैं।

इस संदर्भ में जिन विदेशियों की हम नकल कर रहे हैं, उनके जीवन-प्रबंधन पर एक नजर डालना जरूरी है। दिलचस्प यह है कि जिस कंपनी ने दुनिया को आइफोन और आइ-पैड दिया, उसके सह-संस्थापक ने अपने बच्चों को कभी उसे हाथ तक नहीं लगाने दिया। जी हां, 'एप्पल' के स्टीव जॉब्स ने अपने घर पर टेक्नोलॉजी के इस्तेमाल की सीमा तय कर रखी है। उन्हें जरूर आभास रहा होगा कि जब कोई इंसान स्मार्टफोन का लती हो जाता है तो समाज से दूर हो जाता है। दुनिया की दिग्गज प्रौद्योगिकी कंपनियों में काम करने वाले लोग प्रौद्योगिकी से दूरी रख कर ही अपने बच्चों की परवरिश कर रहे हैं। बच्चों को गैर-तकनीकी स्कूलों में भेजा जा रहा है, जहां कंप्यूटर के बजाय किताबों पर आधारित शिक्षा पर जोर दिया जाता है।

अनुशासन की सीमा में कोई भी काम किया जाए तो नुकसान नहीं करता। लेकिन हमारे यहां स्थिति बिल्कुल उलट है और अब हाथ से निकल रही है। यहां तो अभिभावक ही फोन नहीं छोड़ते, बच्चे उनसे ही सीखेंगे। क्या हमने कभी विदेशियों से उनकी अच्छी बातें, आदतें सीखीं? हम अक्सर बच्चों को पहले गलत सुविधाओं के नाम पर जी भर कर बिगाड़ते हैं, लंबे समय तक उनकी जिद और गलत आदतों को मनोरंजन समझते रहते हैं। कहते रहते हैं कि कोई बात नहीं बच्चे हैं। फिर जब स्थिति हाथ से निकल रही होती है या निकल चुकी होती है तो घोषणा कर देते हैं कि आजकल के बच्चे बहुत खराब होते हैं।

यह कितना प्रशंसनीय है कि माइक्रोसॉफ्ट के संस्थापक बिल गेट्स ने अपने बच्चों को चौदह साल की उम्र तक मोबाइल नहीं दिया था। कुछ साल पहले जब उनकी बेटी वीडियो गेम खेलने के प्रति आसक्त होने लगी तो उन्होंने घर पर बच्चों के लिए समय-सीमा तय कर दी। उनके घर में कोई भी खाने की मेज पर मोबाइल प्रयोग नहीं कर सकता। वे रात के खाने के समय बच्चों से सिर्फ इतिहास और नई किताबों पर चर्चा करते हैं। क्या हम ऐसी शुरुआत अपने जीवन में कर सकते हैं? सुखद यह होगा कि हर अभिभावक बदलाव की शुरुआत करे। अभिभावक सही तरीके से सही संवाद शुरू करेंगे तो बच्चे भी मोबाइल की गोद में नहीं बैठेंगे।

बड़ा दांव

कांग्रेस ने एक बड़ा दांव चला है। उसने प्रियंका गांधी को पूर्वी उत्तर प्रदेश के लिए महासचिव बनाया है जिसे भारतीय जनता पार्टी का गढ़ कहा जा रहा है। आगामी लोकसभा चुनाव से ठीक पहले कांग्रेस ने तुरुप का इक्का चला है। असल में यह लोकसभा चुनाव कांग्रेस पार्टी के लिए करो या मरो का चुनाव बन गया है, इसलिए वह अपनी तैयारी में किसी प्रकार की कोई कसर बाकी नहीं रखना चाहती है। यही वजह है कि लंबे इंतजार के बाद राहुल गांधी की बहन प्रियंका वाड्रा सक्रिय राजनीति में उतरने जा रही हैं। प्रियंका गांधी का सक्रिय राजनीति में आना और उन्हें पूर्वी उत्तर प्रदेश की कमान दिया जाना कांग्रेस का एक बड़ा मास्टर स्ट्रोक माना जा रहा है। उनकी सक्रिय राजनीति में एंट्री ऐसे समय हुई है जब तीन राज्यों के हालिया विधानसभा चुनाव के परिणाम ने कांग्रेस में नई ऊर्जा का संचार किया है।

दूसरी ओर समाजवादी पार्टी और बहुजन समाज पार्टी ने कांग्रेस को महागठबंधन में जगह नहीं दी है, लिहाजा कांग्रेस के लिए यह समय पार्टी में नई जान फूंकने के लिए महत्त्वपूर्ण है और उसने किया भी ऐसा ही है। हालांकि तुरुप का यह इक्का चुनाव के खेल को अपने पक्ष में कर पाता है या नहीं यह तो आने वाला समय ही बताएगा लेकिन एक बात जो कांग्रेस ने फिर से साबित कर दी है वह यह कि उसने हमेशा परिवारवाद को बढ़ावा दिया है और मौजूदा स्थिति भी इससे अलग नहीं है।

प्रियंका को महासचिव बनाए जाने से कार्यकताओं पर प्रभावी सकारात्मक असर जरूर पड़ेगा और वे ज्यादा ऊर्जा के साथ अपने काम को अंजाम देंगे। लेकिन बेहतर होता अगर कांग्रेस इस बात का भी आकलन कर लेती कि उसके इस मास्टर स्ट्रोक का आम जनता पर क्या असर पड़ेगा। उत्तर प्रदेश में 2014 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस की जो हालत थी उसे पार्टी 2019 में कितना बेहतर कर पाती है यह तो आने वाला समय बताएगा। लेकिन ऐसे मास्टर स्ट्रोक की जगह अगर वह आम जनता से जुड़ने की कोई खास रणनीति बना पाती तो संभवत यह उसके लिए ज्यादा हितकारी साबित होता क्योंकि जनता को चाहिए कि सत्ता में वही पार्टी आए जो जनता के बीच आकर उसकी समस्याएं सुने व उनका निवारण करे।

जनता चाहती है कि नेता उसकी बात को समझें और उसके लिए सियासत करें न कि उनसे सियासत करें। आगामी लोकसभा चुनाव में चाहे कोई भी पार्टी जीते व किसी भी पार्टी का प्रतिनिधि प्रधानमंत्री की कुर्सी पर विराजमान हो लेकिन उस पार्टी को यह बिल्कुल नहीं भूलना चाहिए कि उसकी सरकार जनता की वजह से है व जनता के लिए है। सबसे पहले उसे जनता के हित में सोचना चाहिए।

● *अमन सिंह, प्रेम नगर, बरेली*

बढ़ती खाई

आक्सफैम की रपट के मुताबिक भारत के शीर्ष नौ अमीरों के पास देश की पचास प्रतिशत संपत्ति है वहीं पचास प्रतिशत गरीबों की संपत्ति में केवल तीन प्रतिशत वृद्धि हुई है। यह बेहद दुखद है। हमारे देश में चंद लोगों के हाथ में मुल्क की आधी संपत्ति है शायद यही हमारे पिछड़ेपन का कारण है क्योंकि इससे गरीब-अमीर के बीच की खाई बढ़ती जा रही है। देश में कुछ लोग अत्यंत साधन-संपन्न हैं जबकि बाकी लोग बुनियादी आवश्यकताओं के लिए भी तरस रहे हैं। यह सब हुआ है पूंजीवाद के कारण जिसमें अमीर और अमीर बनता जाता है और गरीब और गरीब। देश में आय का वितरण समान होना चाहिए।

● *चांद मोहम्मद, दिल्ली विश्वविद्यालय*

मतदाता दिवस

किसी भी लोकतांत्रिक देश में मतदाता की अहम भूमिका होती है। यह भी माना जाता है कि जिस देश में नागरिक अपने मताधिकार को लेकर सजग होते हैं वह उतनी ही प्रगति करता है। भारतीय लोकतंत्र विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। हर साल 25 जनवरी को हम राष्ट्रीय मतदाता दिवस मनाते हैं। 2011 में भारत सरकार ने निर्वाचन आयोग के स्थापना दिवस को ही राष्ट्रीय मतदाता दिवस के रूप में मनाने की शुरुआत की थी। इसे मनाने का प्रमुख उद्देश्य मतदाताओं को लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना है।

यह दिवस देश के सभी मतदाताओं द्वारा अपने मताधिकार का प्रयोग करने लिए संकल्प लेने का दिन भी है। मताधिकार को नहीं समझने के कारण ही हमारे देश में मतदान केवल साठ प्रतिशत के आसपास रहता है। यदि मतदाता जागरूक और निर्वाचक सूचियां अद्यतन हों तभी मतदान का प्रतिशत बढ़ेगा। इसके मद्देनजर नागरिकों को मताधिकार के प्रति जागरूक होना चाहिए।

भारत का संविधान हर उस नागरिक को मतदान का अधिकार देता है जिसकी उम्र 18 वर्ष हो चुकी है। यह आयु पूरी करने पर देश के सभी युवक-युवती अपना नाम मतदाता सूची में अनिवार्यतः जुड़वाएं और मतदाता फोटो पहचान पत्र प्राप्त करें। वे मतदाता होने पर गर्व करें और जब भी चुनाव हो अपने मतदान केंद्र पर जाकर मत का प्रयोग करें। देश के मतदाता बिना किसी प्रलोभन के सभी निर्वाचनों में मतदान करेंगे तभी देश में लोकतंत्र मजबूत बनेगा। कई स्थानों पर मतदाताओं के नाम सूचियों से गायब होने व नामों के दोहराव की स्थिति भी सामने आती रही है। लिहाजा यह सुनिश्चित हो कि देश के हर वयस्क नागरिक का नाम उसके निर्वाचन क्षेत्र की मतदाता सूची में रहे ताकि वह वोट डाल पाए।

समाज के हर वर्ग को चुनाव जैसे महापर्व में बढ़-चढ़कर अपनी भागीदारी करनी होगी तभी मतदान का प्रतिशत बढ़ेगा और लोकतंत्र मजबूत होगा। निर्वाचन आयोग के साथ-साथ सामाजिक संस्थाएं भी मतदान के लिए विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से देशवासियों में जागृति लाने का कार्य करें।

● *राजेंद्र कुमावत, जयपुर*

गांवों में रोजगार

हमारे देश में गांवों से शहरों की ओर रोजगार के लिए पलायन लगातार जारी है। इससे शहरों की जनसंख्या बढ़ रही है। इस बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्य पदार्थ, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसी मूलभूत सुविधाएं भी जुटा पाना मुश्किल है। गांवों में रोजगार के पर्याप्त साधन उपलब्ध करा कर पलायन की इस समस्या से बचा जा सकता है। किसी भी देश के विकास के लिए उसके गांवों का विकसित होना जरूरी है।

● *श्रीनिवास बिश्नोई, नोखा, राजस्थान*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com